नाद-नर्तन
जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक

UGC-CARE Listed ISSN: 2349-4654
वर्ष : 13, अंक : 1, जनवरी 2025

कुमाऊँनी बैठकी होली में लय और ताल का व्यवहार

प्रियतोष कर्नाटक
शोधार्थी, एल.एस.एम.जी.पी.जी कॉलेज, पिथौरागढ़, (उत्तराखण्ड)

सार-संक्षेप

कुमाऊँनी बैठकी होली भारतवर्ष के उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ क्षेत्र की एक परम्परागत गायन शैली है। इस विधा का कई वर्षों से कुमाऊँ के सभी क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान है। प्रत्येक वर्ष पौष मास के प्रथम रविवार से होली गायन प्रारंभ हो जाता है। उस्ताद अमानत हुसैन को शास्त्रीय कुमाऊँनी होली का जनक माना जाता है। अल्मोड़ा के सुप्रसिद्ध गायक स्व. पं. तारा प्रसाद पाण्डेय का योगदान इस विधा को परिमार्जित करने में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुमाऊँनी बैठकी होली में लय और ताल का व्यवहार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम मध्यलय में जतताल में होली प्रारंभ होती है। अगले चरण में थोड़ा सा लय बढ़ाकर होली का गायन तीनताल में प्रारंभ होता है, तीनताल के बाद सितारखानी तथा अंत में कहरवा ताल में होल्यार होली का गायन करते हैं। कुमाऊँनी बैठकी होली में मुख्य होल्यार के अलावा अन्य होल्यार अपने-अपने अंदाज में गायन करते हैं। इस परम्परा को 'भाग लगाना' या 'हाँक लगाना' कहा जाता है। होली जमाने में लय और ताल का व्यवहार विशेष महत्त्व रखता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य 'कुमाऊँनी बैठकी होली' का प्रचार-प्रसार, सरंक्षण-संवर्धन है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र के श्रेष्ठ होल्यारों एवं कुशल तबला वादकों से सम्पर्क स्थापित कर साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से समस्त पाठक कुमाऊँनी बैठकी होली में निहित लय और ताल के अनूठे व्यवहार से अवगत हो पाएँगे।

मुख्य शब्द : कुमाऊँनी होली, होल्यार, भाग लगाना, हाँक लगाना, होली जमना

शोध-पत्र

सामान्य परिचय—कुमाऊँ में होली गायन की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। कुमाऊँनी होली, उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र की एक अनूठी और समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा है। कुमाऊँनी होली का यह उत्सव मात्र रंगों तक सीमित नहीं है, वरन् यह संगीत (गायन, वादन, नृत्य) और सांस्कृतिक परम्पराओं का जीवंत मेल है। मुख्य रूप से इस सुदीर्घ परम्परा में होली गायन के तीन प्रकार हैं—

1. खड़ी होली : यह समूह में खड़े होकर ढोल बजाकर खुले आँगनों में गायी जाती है। इसमें पुरुष एक वृत्त में खड़े होकर या घूमते हुए गीत गाते हैं और एक प्रकार का विशेष नृत्य करते हैं। ढोल, मंजीरा और कुछ अन्य लोक वाद्य यंत्रों के ताल के साथ लोग गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। खड़ी होली में ताल की लय के अनुसार नृत्य और गीत का सामंजस्य बना रहता है, जो इसे और भी आकर्षक और जीवंत बना देता है।

2. बैठकी होली : यह शास्त्रीय संगीत के रागों पर निबद्ध होती है एवं घरों के अन्दर बैठकर गायी जाती है। बैठकी होली को नागर होली के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। हारमोनियम, तबला, मंजीरा तथा अन्य वाद्य यंत्रों का प्रयोग इस होली में किया जाता है। दो सिक्कों का प्रयोग करते हुए लोटा बजाये जाने की अद्‌भुत परम्परा कुमाऊँनी बैठकी होली का अभिन्न अंग है।

3. महिला होली : महिला होली जिसमें कुमाऊँ की महिलाएँ भाग लेती हैं, एक विशेष आयोजन होता है। महिलाएँ ढोलक, मंजीरे के साथ अनुशासित क्रम में होली के गीत गाती हैं। सामूहिक गायन की अद्‌भुत परम्परा का निर्वहन महिलाओं द्वारा किया जाता है।

डॉ. इला साह के अनुसार—''कुमाऊँ में प्रचलित होली बृज की होली के समान है। यहाँ की अधिकांश होलियाँ बृज भाषा के साथ राधा-कृष्ण, ग्वाले एवं गोपियों से सम्बन्धित हैं, कुछ गीतों में स्थानीय बोली का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। बसंत पंचमी से रात्रि में बैठी होली प्रारम्भ होती है। युवा-वृद्ध सभी काफी, खमाज, देश, सहाना, विहाग आदि शास्त्रीय राग-रागिनियों में होली गाकर मस्त रहते हैं।'' (साह 143)

भारतवर्ष के उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ मंडल में कुमाऊँ की बैठकी होली का स्वरूप पारंपरिक होली से अलग है। यह एक परंपरागत गायन शैली है। यह गायन शैली पूर्व में क्षेत्र विशेष में सिमटी हुई थी' आधुनिक संचार के माध्यमों ने इस विधा को लोकप्रियता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण

भूमिका निभाई है तथा संगीत जगत में इस विधा को पहचान मिलने लगी है। कुमाऊँनी बैठकी होली का प्रारंभिक स्वरूप वर्तमान स्वरूप से थोड़ा भिन्न था। कुमाऊँ मंडल के शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञों ने कुमाऊँनी बैठकी होली के स्वरूप को परिमार्जित कर इसे नई पहचान प्रदान की है और यह विधा उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती जा रही है। मूलतः शास्त्रीय संगीत से जन्मी कुमाऊँनी बैठकी होली के विशिष्ट स्वरूप को बनाने में उस्ताद अमानत हुसैन का नाम सर्वप्रथम आता है। अल्मोड़ा के सुप्रसिद्ध गायक स्व. पं. तारा प्रसाद पाण्डेय का योगदान इस विधा को परिमार्जित करने में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस विधा को कुमाऊँ विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. विजयकृष्ण एवं सम्पूर्ण पाठ्यक्रम निर्माण समिति को इसका श्रेय जाता है कि उनके द्वारा कुमाऊँनी होली गायन की इस विशिष्ट गायन शैली को स्नातकोत्तर संगीत के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कराया गया है।

कुमाऊँनी होली का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व—कुमाऊँनी होली का अपना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। प्रत्येक वर्ष पौष मास के प्रथम रविवार से होली गायन प्रारम्भ हो जाता है। यह कुमाऊँनी लोगों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों में से एक है। पौष मास के प्रथम रविवार से बसंत पंचमी के मध्य विष्णुपदी (आध्यात्मिक) होलियों का गायन किया जाता है। बसंत पंचमी से शिवरात्रि तक रंग की होलियों का गायन होल्यारों द्वारा किया जाता है। शिवरात्रि के उपरांत होली की छलड़ी तक श्रृंगार रस से परिपूर्ण होलियों का गायन किया जाता है। अंत में टीके के दिन होली के विदाई गीत गाये जाते हैं और भक्तिपूर्ण होलियों के माध्यम से होली को विदाई प्रदान की जाती है। होली का यह त्यौहार पहाड़ी सर्दियों की समाप्ति और नवीन फसल की बुआई के प्रारम्भ का प्रतीक भी है। आध्यात्मिक होलियों का गायन पौष के प्रथम रविवार से ही प्रारम्भ हो जाता है, तथापि एक मतानुसार कुमाऊँ में होली का यह त्यौहार बसंत पंचमी के दिन से शुरू माना जाता है। इस मत के अनुसार—''होली का त्यौहार कुमाऊँ में बसंत पंचमी के दिन शुरू हो जाता है। कुमाऊँनी होली के तीन प्रारूप हैं; बैठकी होली, खड़ी होली और महिला होली। इस होली में सिर्फ अबीर-गुलाल का टीका ही नहीं होता, वरन् बैठकी होली और खड़ी होली गायन की शास्त्रीय परम्परा भी शामिल है। बसंत पंचमी के दिन से ही होल्यार प्रत्येक शाम घर-घर जाकर होली गाते हैं और यह उत्सव लगभग दो महीनों तक चलता है।''

कुमाऊँ क्षेत्र में गायी जाने वाली होलियों में बृज और खड़ी होली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कुमाऊँनी बोली में गायी जाने वाली होलियों के साथ बृजभाषा और खड़ी बोली की होलियों ने कुमाऊँ क्षेत्र में होली की एक समृद्ध परम्परा बनाई है। कहते हैं ग्वालियर, मथुरा से भी मुस्लिम संगीतज्ञ यहाँ आते रहे। लगभग सन् 1850 से होली की बैठकें यहाँ नियमित होने लगीं तथा सन् 1870 से इन्हें वार्षिक समारोह के रूप में भी मनाया जाने लगा। माना जाता है कि वर्षों पहले अल्मोड़ा में बृज की टोलियाँ रासलीला करने आया करती थीं। इन टोलियों में अच्छे-अच्छे कलाकार हुआ करते थे। संभवतः उनसे प्रेरित होकर कुमाऊँनी बैठकी होली का नवीन स्वरूप विकसित हुआ हो। बृज की होली की ही भाँति कुमाऊँ अंचल की होली का स्वरूप भी अपने आप में अनूठा है। कुमाऊँ में होली का प्रारम्भ कब से हुआ, यह अनुमान लगाना कठिन है। अब तक ज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार कुमाऊँ में होली के उत्सव का प्रारम्भ मध्यकाल में 10वीं-11वीं शताब्दी के आसपास माना जा सकता है। इस बात के भी साक्ष्य उपलब्ध हैं कि 16वीं शताब्दी में कुमाऊँ में होली गायन की परम्परा का आरम्भ राजा कल्याणचन्द के समय में हुआ। चन्द राज्यकाल में राजा प्रद्युमन शाह ने रामपुर के दरबारी संगीतज्ञ अमानत हुसैन को अपने यहाँ बुलाया। होलियों में एक प्रचलित रचना इस बात का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है—

'तुम राजा प्रद्युमन शाह मेरी करो प्रतिपाल'
आज होरी खेल रहे हैं, सकल सभासद खेल रहे हैं,
कर धर सुन्दर थाल री' (बंसल 16)

इस तथ्य के भी स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं कि कुमाऊँ में—''राजा कल्याणचन्द के समय दरबारी गायकों के संकेत मिलते हैं। अनुमान लगाया जाता है कि दरभंगा में शासकों से भी कहीं न कहीं सम्बन्ध रहे होंगे। कुमाऊँ और दरभंगा की होली में अनोखा सामंजस्य है। कन्नौज व रामपुर की गायकी का प्रभाव भी इसमें पड़ा। अमानत अली उस्ताद ने होली गायकी को ठुमरी के रूप में सोलह मात्राओं में पिरोया। उस्तादों व पेशेवर गायकों का योगदान इसमें रहा है।''

कुमाऊँनी बैठकी होली गायन का प्राचीन एवं वर्तमान स्वरूप—परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय की आवश्यकतानुसार प्रत्येक गायन शैली परिमार्जित हुआ करती है। कुमाऊँनी बैठकी होली गायन शैली के प्राचीन स्वरूप और वर्तमान स्वरूप में भी अंतर आना स्वाभाविक है। कुमाऊँनी बैठकी होली का प्राचीन स्वरूप तत्कालीन समाजिक परिस्थितियों के अनुरूप था। बैठकी होलियाँ मात्र सीमित स्थानों पर आयोजित हुआ करती थीं। सभी लोग मिलकर सामूहिक रूप से इन बैठकों का आयोजन किया करते थे। सीमित संसाधनों के अंतर्गत बैठकों का आयोजन सौहार्दपूर्ण वातावरण में संपन्न हुआ करता था। वर्तमान समय में बैठकी होलियों का आयोजन व्यापक स्तर पर आधुनिक संसाधनों के प्रयोग के साथ संपन्न होता है। वर्तमान समय में सामूहिक आयोजन यदा-कदा तथा व्यक्तिगत आयोजन अधिक होने लगे हैं। प्राचीन एवं वर्तमान दोनों ही स्वरूपों के अपने-अपने गुण-दोष होना स्वाभाविक है। दोनों स्वरूपों को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए कुमाऊँ के कुछ बुजुर्ग एवं श्रेष्ठ होल्यारों के विचार इस क्रम में प्रस्तुत हैं—

पिथौरागढ़ जनपद के वरिष्ठ होली गायक श्री केदार दत्त भट्ट के अनुसार—''प्रारंभिक वर्षों में बैठकी होली के आयोजन में स्वाभाविकता की संलग्नता वर्तमान की अपेक्षा अधिक थी। मात्र आलू के गुटके, चाय तथा गुड़ के सत्कार द्वारा बैठकें संपन्न हुआ करती थीं। रात भर बैठकें चलती थीं तथा सभी घरों से लोग प्रतिनिधित्व किया करते थे। वर्तमान समय में मनोरंजन के साधनों में वृद्धि के कारण गिने चुने लोगों का ही प्रतिनिधित्व इन बैठकों में देखने को मिलता है। (केदार भट्ट)

अल्मोड़ा जनपद के सुप्रसिद्ध होली गायक श्री जितेन्द्र मिश्रा के अनुसार–''पूर्व में बैठकी होली गायन का स्वरूप इतना परिमार्जित नहीं था, जितना कि वर्तमान में है। उनके अनुसार अल्मोड़ा के सुप्रसिद्ध संगीत शिक्षक एवं होली गायक स्वर्गीय पंडित तारा प्रसाद पाण्डेय ने होली गायन की इस विधा की मौलिकता को सजीव रखते हुए एक नवीन दिशा प्रदान की तथा इस विधा की लोकप्रियता को एक नया आयाम प्रदान किया।'' (जितेन्द्र मिश्रा)

अल्मोड़ा जनपद के सुप्रसिद्ध होली गायक श्री अरुण पाण्डेय के अनुसार–''बैठकी होली गायन की परम्परा के प्राचीन स्वरूप को कायम रखते हुए ही नवीन प्रयोग किये जाने चाहिए। उनका मानना है कि बैठकी होली का मूल स्वरूप यथावत रहना चाहिए।'' (अरुण पाण्डेय)

चम्पावत जनपद के वरिष्ठ होली गायक श्री चतुर सिंह मौनी के अनुसार–''पारम्परिक होली गायन की इस विधा के स्वरूप को यथावत रखा जाना चाहिए जिससे कि समस्त जन समुदाय इसकी ओर आकर्षित हो। उनके अनुसार कुमाऊँनी बैठकी होली की धमार गायन शैली आज भी अपने पारम्परिक स्वरूप में स्थापित है।'' (चतुर सिंह मौनी)

कुमाऊँनी बैठकी होली में लय और ताल का व्यवहार–कुमाऊँनी बैठकी होली में लय और ताल का व्यवहार अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। कुमाऊँनी बैठकी होली में लय और ताल के व्यवहार पर चर्चा से पूर्व लय और ताल पर संक्षिप्त दृष्टि डालना आवश्यक है। संगीत में समय की एकसमान गति को लय कहा जाता है और कुछ मात्राओं अथवा बोलों का समूह ताल कहलाता है। ''संगीत का अस्तित्व लय एवं ताल पर ही टिका होता है। ताल के बिना संगीत अपूर्ण है। जैसे किसी पक्षी का उड़ना उसके पंखों पर निर्भर करता है उसी तरह संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों विधाओं की क्रिया ताल पर ही निर्भर है। ताल के बिना संगीत पूर्ण रूप से निष्प्राण या निर्जीव हो जायेगा। तालों से संगीत में विभिन्न रसों का निष्पादन होता है। दादरा, कहरवा आदि तालों से शृंगार रस की उत्पत्ति होती है। एकताल व झूमरा से शांत रस, रूपक से करुण रस, कुम्भ व गजझम्पा तालों से अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है।''(बसंत 556)

कुमाऊँनी बैठकी होली एक भावप्रधान गीत है जो मुख्यतः शृंगार रस एवं भक्ति रस से ओत-प्रोत होता है। इसमें स्वर, लय तथा ताल के साथ काव्य (शब्द रचना) को प्रबल माना जाता है। इसकी काव्य रचना छोटी होती है जिसे स्वरों की बढ़त द्वारा भावपूर्ण बनाते हुए विस्तारित किया जाता है। ठुमरी गायन की तरह शब्दों का एक विशिष्ट तरीके से उच्चारण कर इसमें अच्छे गायक अलग-अलग तरीकों से भावनाओं को व्यक्त करते हैं। इसे सामान्यतः उप-शास्त्रीय भारतीय संगीत का गीत माना गया है। कुमाऊँनी बैठकी होली में मुख्य रूप से जतताल, तीनताल, अद्धा ताल (सितारखानी) एवं कहरवा तालों का प्रयोग किया जाता है। इन सभी तालों में प्रयुक्त लय कुमाऊँनी बैठकी होली को सजीव एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाने में सहायक होती हैं।

कुमाऊँनी बैठकी होली का गायन जतताल में मध्य लय में किया जाता है। इस लय में बोल-बनाव द्वारा विस्तार कर अलग-अलग तरीकों से भावाभिव्यक्ति में गायक सहज रहता है और अपने भावों को सौन्दर्यपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। जैसा कि, रंजकता तथा भावाभिव्यक्ति कुमाऊँनी बैठकी होली का मूल मंतव्य है, इसकी पूर्ति हेतु जतताल की मध्यलय का विशिष्ट योगदान है। जतताल में गायन के उपरांत लय में थोड़ा सा वृद्धि कर तीनताल और तदुपरांत अद्धा ताल (सितारखानी) में गायन किया जाता है। इन तालों में बोल-बनाव का काम नहीं के बराबर होता है, बल्कि भिन्न-भिन्न तरीकों से गीत की पंक्तियों को गाकर गायक तबले के सम से गीत के सम को मिलाता रहता है। अद्धा ताल (सितारखानी) की लय श्रोताओं को झुमाने में सक्षम होती है। सितारखानी के प्रारम्भ होते ही श्रोतागण विशिष्ट आनंद की अनुभूति कर गायन का रसास्वादन करने लगते हैं। अंत में कहरवा ताल में गायन कर होली गीत का समापन किया जाता है। नए गायक कहरवा ताल में आवाज लगा कर होली गायन सीखना प्रारम्भ करते हैं। इस गायन शैली में कहरवा ताल में गायन अन्य तालों के गायन की अपेक्षा सरल होता है। कुमाऊँनी होली की बैठकों में मुख्य गायक अन्य गायकों को गायन के मध्य गाने का अवसर प्रदान किया करते हैं, इस प्रक्रिया को होली की भाषा में 'हाँक लगाना' या 'भाग लगाना' कहा जाता है।

कोई भी सांगीतिक रचना ताल के बिना नितान्त अधूरी है, पर कुमाऊँनी बैठकी होली गायन के सम्बन्ध में यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ताल के बिना यह निष्प्राण है। जतताल, तीनताल, अद्धा ताल (सितारखानी) एवं कहरवा तालों का उचित सम्मिश्रण कुमाऊँनी बैठकी होली गायन को सरस एवं भावपूर्ण बना देता है। आधुनिक समय में अच्छे तबला वादक विभिन्न तरीकों से इन तालों के ठेके बजाते हैं तथा कहरवा ताल के विभिन्न प्रकारों एवं इसमें लग्गी लड़ी के प्रयोग से कुमाऊँनी बैठकी होली में चार चाँद लगा देते हैं। सितारखानी बजाते समय डग्गे की गमक देखते ही बनती है तथा कहरवा की विभिन्न किस्में श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती हैं। सारा होली समाज एकरस हो जाता है। होली की भाषा में इस एकरस वातावरण को ही 'होली जमना' कहा जाता है। कहरवा ताल के विभिन्न प्रकार बैठकी होली को प्रभावपूर्ण बना देते हैं। लग्गी लड़ी बजाने के उपरांत तिहाई या नौहक्का बजाकर जब कुशल तबला वादक गीत के सम पर आते हैं तो अनायास ही श्रोतागण वाह करने पर मजबूर हो जाते हैं।

युवा तबला वादक स्वरित कृष्ण साह के अनुसार–''कुमाऊँनी होली में ताल न केवल संगीत की धुन को नियंत्रित करता है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी है। हर ताल की अपनी विशेषता और महत्त्व है। यह तालें पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं और इन्हें सिखाना और सहेजना कुमाऊँनी लोक संगीत का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। कुमाऊँनी होली के गीत जिन्हें 'होली के रसिया' कहा जाता है, अक्सर रागों और तालों के अद्वितीय संयोजन में गाये जाते हैं। कुमाऊँनी होली में ताल का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि यह समुदाय के लोगों को एकसाथ लाने का काम करता है। ताल के साथ गाये गए गीतों और नृत्य के माध्यम से लोग अपने दुख, चिंताओं को भुलाकर एक सामूहिक आनंद का अनुभव करते हैं।'' (स्वरित कृष्ण साह)

कुमाऊँनी बैठकी होली में धमार के नाम से एक नवीन शैली में गायन किया जाता है। धमार के नाम से सम्बोधित की जाने वाली इस शैली का धमार नामक ताल में गायी जाने वाली गायन शैली धमार से कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ धमार के नाम से गाये जाने वाले इन होली गीतों को 16 मात्रा में गाया जाता है। यहाँ गाये जाने वाले यह धमार अत्यंत आकर्षक एवं कलाप्रधान होते हैं। ''बैठ होली को इतना सरल एवं कर्णप्रिय बनाने में इसके ताल पक्ष का बहुत योगदान है। बैठ होली में चांचर ताल और धमार ताल प्रमुख हैं। यह दोनों 16 मात्रा की होती हैं। धमार का आशय 14 मात्रा से है किन्तु यहाँ 16 मात्रा की धमार अद्भुत है। इसमें धमार व चारताल का सम्मिश्रण होता है। इसे तीनताल के छाया रूप से मध्यलय में बजाया जाता है और दुगुन की बढ़त के साथ चमत्कृत किया जाता है। चांचर ताल की लय भी तीनताल मध्यलय की भाँति होती है। इसमें दीपचंदी ताल और जतताल का सा आभास होने लगता है। किन्तु इसकी अलग ही महक है। चांचर को ठाहलय में बजाने के बाद तीनताल और फिर कहरवा ताल में बजाया जाता है। इस सुन्दर समायोजन को स्थायी-अंतरे में बजाया जाता है। इस प्रकार के गायन में न गा सकने वाला रसिकजन कहरवा बजने पर तो गा ही जाता है और झूम उठता है। अंत में ठाहलय के 'सम' पर आते ही सभा 'वाह' कह उठती है।'' (उप्रेती 115)

कुमाऊँनी होली के सुप्रसिद्ध गायक देवकीनंदन जोशी के अनुसार– ''होली की गायकी में ताल अंग प्रधान है। कुशल तबला वादक की संगत होली को जमाने में सहायक सिद्ध होती है। होली गायकी की लयकारी, बोल-बनाव इत्यादि सजीली संगत में ही संभव हैं। अच्छी संगत के अभाव में प्रभावपूर्ण होली गायन असंभव है।'' (देवकीनंदन)

संगीत शिक्षक एवं होली गायक सुरेश कर्नाटक के अनुसार - ''जहाँ तक मेरा अनुभव है, कुमाऊँनी बैठकी होली, जिसमें लय और ताल का अति विशिष्ट व्यवहार है, कुमाऊँ की सांस्कृतिक धरोहर तो है ही, इसे भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विभिन्न होली गीतों को विभिन्न तालों में निबद्ध कर गायी जाने वाली कुमाऊँनी बैठकी होली गायकों, वादकों एवं श्रोताओं को भक्ति रस एवं शृंगार रस से ओतप्रोत कर लौकिक आनंद प्रदान कर आत्मिक उन्नति की ओर उन्मुख करने में भी पूर्णतः सक्षम है।'' (सुरेश कर्नाटक)

कुशल तबला वादक केदार खर्कवाल के अनुसार–''विभिन्न रागों में गायी जाने वाली कुमाऊँनी होलियों में सर्वप्रथम राग का आरंभिक आलाप लिया जाता है। तत्पश्चात होली की बंदिश गायी जाती है। बंदिशों में बोल-बनाव इसके भावात्मक पक्ष को और भी अधिक सुन्दर बना देता है। कुमाऊँनी बैठकी होली की मुख्य विशेषता है कि इसके एक ही गीत में चाचर ताल, तीनताल, सितारखानी, कहरवा ताल जैसी तीन चार समपदी तालों का प्रयोग मिलता है।'' (केदार खर्कवाल)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कुमाऊँनी बैठकी होली गायन में लय तथा ताल का अद्वितीय व्यवहार है। लय तथा ताल के उचित समावेश के बिना इसकी सुन्दरता कल्पना से परे है। कुमाऊँनी बैठकी होली की सर्वोपरि विशेषता यह है कि यह होली गायन भक्ति रस से प्रारंभ हो कर शनैः शनैः पूर्ण शृंगार रस तक जाकर अंततः टीके के दिन आशीर्वाद स्वरूप गायी जाने वाली बैठकी होलियों एवं मनुष्य को आत्मिक उन्नति हेतु सजग करने वाली होलियों से समाप्त किया जाता है। यथा–

''अब तक होरी सो होरी, समझ कर खेलो री होरी।
रंग प्रेम का मूल्य बहुत है, समझ समझ के रंगो री।
एक तीन दुई, अब मत रंगिहों, सबको साथ ले रंगो री।
तब ही हम सबकी होरी, अब तक होरी सो होरी'' (बंसल 32)

अतः कहा जा सकता है कि कुमाऊँनी बैठकी होली भारतवर्ष के उत्तराखंड राज्य की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साह, इला, कुमाऊँनी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, प्रथम संस्करण-2008, पृ. 143
2. बंसल, विनोद कुमार, होली-सरगम, ठा. आनन्दसिंह उम्मेदसिंह एंड संस, बुकसेलर्स एंड पब्लिशर्स, लाला बाजार, अल्मोड़ा, प्रथम संस्करण 2000, पृ. 16
3. https: // www.amritvichar.com, Accessed on 28 July 2024, 18:10
4. साक्षात्कारः केदार भट्ट (वरिष्ठ होली गायक), बिसाड़, पिथौरागढ़, तिथि 10-12-2024, 12:25
5. साक्षात्कारः जितेन्द्र मिश्रा (सुप्रसिद्ध होली गायक), अल्मोड़ा, तिथि 11-12-2024 10:30
6. साक्षात्कारः अरुण पाण्डेय (सुप्रसिद्ध होली गायक), अल्मोड़ा, तिथि 11-12-2024 12:30
7. साक्षात्कारः चतुर सिंह मौनी (वरिष्ठ होली गायक), पाटी, चम्पावत तिथि 12-12-2024 12:30
8. वसंत-संगीत विशारद, पृ. 556
9. साक्षात्कारः स्वरित कृष्ण साह (युवा तबला वादक), पितरौटा, पिथौरागढ़, तिथि 28-08-2024, 20:10
10. उप्रेती, पंकज, कुमाऊँ का होली गायन लोक एवं शास्त्र, पिघलता हिमालय प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल) प्रथम संस्करण 2009, पृ. 117
11. साक्षात्कारः देवकी नन्दन जोशी (सुप्रसिद्ध होली गायक) हिम्मतपुर, हल्द्वानी, तिथि 14-09-2024, 12:10
12. साक्षात्कारः सुरेश कर्नाटक (संगीत शिक्षक एवं होली गायक) सरस्वती विहार कॉलोनी, पिथौरागढ़, तिथि 16-09-2024, 20:30
13. साक्षात्कारः केदार खर्कवाल (कुशल तबला वादक), नियर बस स्टेशन, पिथौरागढ़, तिथि 18-09-2024, 18:10
14. बंसल, विनोद कुमार, होली - सरगम, डॉ. आनन्दसिंह उम्मेदसिंह एंड संस, बुकसेलर्स एंड पब्लिशर्स, लाला बाजार, अल्मोड़ा, प्रथम संस्करण 2000, पृ. 32